International Journal of Hindi Research
ISSN: 2455-2232, Impact Factor: (RJIF 5.22)
www.hindijournal.com
Volume 2; Issue1; January 2016; Page No. 63-64

श्रीमद्भगवद्गीता में दी गयीं आज्ञाएँ

राका शर्मा
एसोसिएट प्रोफेसर, संस्कृत विभाग, एन०के०बी०एम०जी० कॉलिज, चन्दौसी, उत्तर प्रदेश, भारत

सारांश
गीता एक प्रासादिक ग्रन्थ है। इस छोटे से ग्रन्थ में इतनी विलक्षणता है कि अपना कल्याण चाहने वाला व्यक्ति किसी भी जाति, वर्ण, आश्रम, सम्प्रदाय, देश आदि का क्यों न हो इस ग्रन्थ को पढ़ते ही इसके प्रति आकृष्ट हो जाता है। यदि गीता में वर्णित ज्ञान को तथा आज्ञाओं को मनुष्य भली–भाँति समझ लें तो युद्ध जैसी विषम परिस्थिति में भी मनुष्य अपना कल्याण कर सकता है।

मूल शब्दः श्रीमद्भगवद्गीता, ग्रन्थ, जाति, वर्ण, आश्रम, सम्प्रदाय

प्रस्तावना

गीता के प्रारम्भ में ही दुर्योधन द्रोणाचार्य को आदर देकर, विशेषता से युद्ध करने तथा सेनानायकों को भीष्म पितामह की रक्षा करने की आज्ञा देता है। (गीता 1/3)

ब्रह्मा जी सृष्टि को रचने वाले तथा उसके स्वामी हैं। अपने कर्त्तव्य का पालन करने के साथ–साथ वे प्रजा की रक्षा तथा कल्याण का निरन्तर विचार करते रहते हैं। सृष्टि का सुचारू रूप से संचालन मनुष्यों तथा देवताओं के आपसी मधुर सम्बन्धों से ही हो सकता है इसलिए ब्रह्मा जी 'प्रसविष्यध्वमेष' एवं 'भावयत' पदों से मनुष्यों को आज्ञा देते हैं कि तुम कर्त्तव्य कर्मरूप यज्ञ द्वारा अपनी बुद्धि करो और इस यज्ञ से देवताओं को उन्नत करो। 'ते देवा भावयन्तु वः' पद से देवताओं को आज्ञा देते हैं कि वे भी अपने–अपने अधिकार द्वारा मनुष्यों को उन्नत करें। वैसे तो वृक्ष, लता आदि में स्वाभाविक ही फल–फूल लगते रहते हैं किंतु यदि उनमें ठीक समय पर खाद–पानी दिया जाए तो उनमें फल–फूल विशेषता से लगते हैं। ठीक इसी तरह मनुष्य जब यजन–पूजन से देवताओं को तृप्त करते हैं तो देवता भी विशेष न्यायप्रद हो जाते हैं–

सहयज्ञाः प्रजा सृष्ट्वा पुरोवाच प्रजापतिः।
अनेन प्रसविष्यध्वमेष वोऽस्त्विष्टकामधुक।।
देवान् भावयतानेन ते देवा भावयन्तु वः।
परस्परं भावयन्तः श्रेयः परभवाप्स्यथ।।

भगवान् जनसाधारण को आज्ञा देते (गीता 3/10–11) हैं कि जिस तरह मैं सावधान होकर कर्त्तव्य कर्म करता हूँ वैसे ही सभी मनुष्य मेरे मार्ग का अनुसरण करते हैं। यदि मैं ही कर्म न करूँ तो ये सब मनुष्य नष्ट–भ्रष्ट हो जाएँ (गीता 3/23–24) जैसे इंजन के पहियों के चलने से इंजन से जुड़े डिब्बे भी चलते रहते हैं ठीक इसी प्रकार भगवान् और संत, महात्मा इंजन के समान, साधारण मनुष्यों को कर्म में प्रवृत्त करने के लिए प्रमाद रहित होकर कर्म करते रहते हैं।

भगवान् ज्ञानी जनों को आज्ञा देते हैं कि वे गुणों और कर्मों में आसक्त अज्ञानियों को विचलित न करें। (गीता 3/29)

भगवान् ने अर्जुन को कई आज्ञाएँ दी हैं। जब अर्जुन मोह को प्राप्त करके युद्ध नहीं करना चाहते हैं तो श्रीकृष्ण उनसे कहते हैं–

हतो वा प्राप्स्यसि स्वर्गं जित्वा वा मोक्ष्यसे महीम्।
तस्मादुतिष्ठ कौन्तेय युद्धाय कृत निश्चयः। गीता 2/37
तस्मादज्ञानसम्भूतं हृत्स्थं ज्ञानासिनात्मनः।
छित्वैनं संशयं योगमातिष्ठोत्तिष्ठ भारत।। गीता 4/42

कायरता के कारण अर्जुन युद्ध करने में अधर्म तथा युद्ध न करने में धर्म मान रहे हैं। अर्जुन के सामने युद्धरुय कर्त्तव्य कर्म है। अतः भगवान् आज्ञा देते हैं–

क्लैव्यं मा स्म गमः पार्थ नैतत्त्व्युपपद्यते।
क्षुद्रं हृदयदौर्बल्यं त्यक्त्वोतिष्ठ परंतप।। गीता 2/3

भगवान् कहते हैं कि क्षत्रिय का सबसे बड़ा कर्त्तव्य आततायियों का विनाश करना होता है। अतः अपने क्षत्रिय धर्म को देखकर भी तू युद्ध से विमुख कैसे हो सकता है? तू युद्ध कर 'युद्धाय युज्यस्व' 2/38, युध्यस्व 3/30, 11/34। होनहार को कोई टाल नहीं सकता है। तुम्हारे मारे बिना भी प्रतिपक्षी बचेंगे नहीं। अतः युद्ध के लिए खड़े हो जाओ और यश प्राप्त करो। (गीता 11/33)

केवल युद्ध की ही आज्ञा भगवान् ने नहीं दी वरन् कर्मयोग की भी आज्ञा देते हुए भगवान् कहते हैं–

कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन्।
मा कर्मफलहेतुर्भू मा ते सङ्गोऽस्त्वकर्मणि।। गीता 2/47

कर्मयोगी को निष्काम भाव होना चाहिए। कर्मों की पूर्ति हो या ना हो, फल की प्राप्ति हो अथवा नहीं, मुक्ति मिले या न मिले उसे तो कर्त्तव्य कर्म करते रहना चाहिए। इसी बात को भगवान् अर्जुन से कह रहे हैं कि आसक्ति का त्याग कर, सिद्धि–असिद्धि को समान समझकर, योग में स्थित होकर कर्म कर। (गीता 2/48)

हे अर्जुन! शास्त्र विधि से नियत किए गए कर्म कर– 'नियतं कुरु कर्म' (गीता 3/8)

अर्जुन मुमुक्षु थे पर युद्ध रूप से प्राप्त अपने कर्त्तव्य कर्म को करने में उन्हें अपना कल्याण नहीं दिखायी देता। अतः वे उसको घोर कर्म समझकर उसका त्याग करना चाहते हैं। तब भगवान् उन्हें विवस्वान, मनु, इक्ष्वाकु आदि मुमुक्षुओं का उदाहरण देकर 'कुरु कर्मैव' अर्थात् पूर्वजों के द्वारा सदा से किए जाने वाले कर्म करने की आज्ञा देते हैं। (गीता 4/15)

कर्मयोग की आज्ञा देने के साथ–साथ भगवान् ज्ञानयोग की आज्ञा भी देते हैं। भगवान् का नियम है जो जिस तरह उनकी शरण लेता है वे उसी के अनुरूप उसको आश्रय प्रदान करते हैं। जो भक्त अपनी वस्तु मुझे अर्पण कर देता है मैं उसे अपनी वस्तु देता हूँ। भक्त का अर्पण तो सीमा में बँधा हुआ है पर भगवान् तो असीमित देने की क्षमता रखते हैं, जो मनुष्य परमात्मा द्वारा दी

गयी स्वतंत्रता को भगवान् को ही सौंप देता है। भगवान् कहते हैं मैं उसके अधीन हो जाता हूँ, अतः 'तत्कुरुष्व मदर्पणम्' (गीता 9/27)

भजस्व माम् (गीता 9/33) कहकर भगवान् आज्ञा देते हैं कि हे अर्जुन! इस अनित्य और सुखरहित शरीर को प्राप्त करके मेरा भजन कर। जब वर्तमान में पाप करने वाला दुराचारी और पूर्वजन्म के पापों के कारण निम्न योनियों में जन्म लेने वाले प्राणी मेरे शरण में आकर परम पवित्र हो जाते हैं तो पवित्र ब्राह्मण और क्षत्रिय मेरी शरण में आ जायें तो उन्हें निश्चित ही परम गति प्राप्त होगी। सांसारिक पदार्थों का आना–जाना तो मेरे विधान से स्वतः ही होता रहेगा। तू अपनी ओर से विनाशशील पदार्थों का उद्देश्य मत रख। उनसे विमुख होकर तू केवल मेरी शरण में आ जा, मेरे सम्मुख हो जा, मेरा भजन कर।

संदर्भ ग्रंथ

1. गीता चिंतन, गीता प्रेस, गोरखपुर
2. श्रीमद्भगवद्गीता साधक संजीवनी, स्वामी रामसुखदास, गीता प्रेस, गोरखपुर
3. श्रीमद्भगवद्गीता, गीता प्रेस, गोरखपुर
4. श्रीमद्भगवद्गीता रहस्य, बालगंगाधर तिलक, हिन्दी अनुवाद द्वारा माधवराव सप्रे।
5. गीता संग्रह, गीता प्रेस, गोरखपुर
6. श्रीमद्भगवद्गीता, महात्म्यसहित, गीता प्रेस, गोरखपुर
7. गीता ज्ञान प्रवेशिका, स्वामी रामसुखदास, गीता प्रेस, गोरखपुर